श्रीमद्भागवतम्

स्कन्ध 3

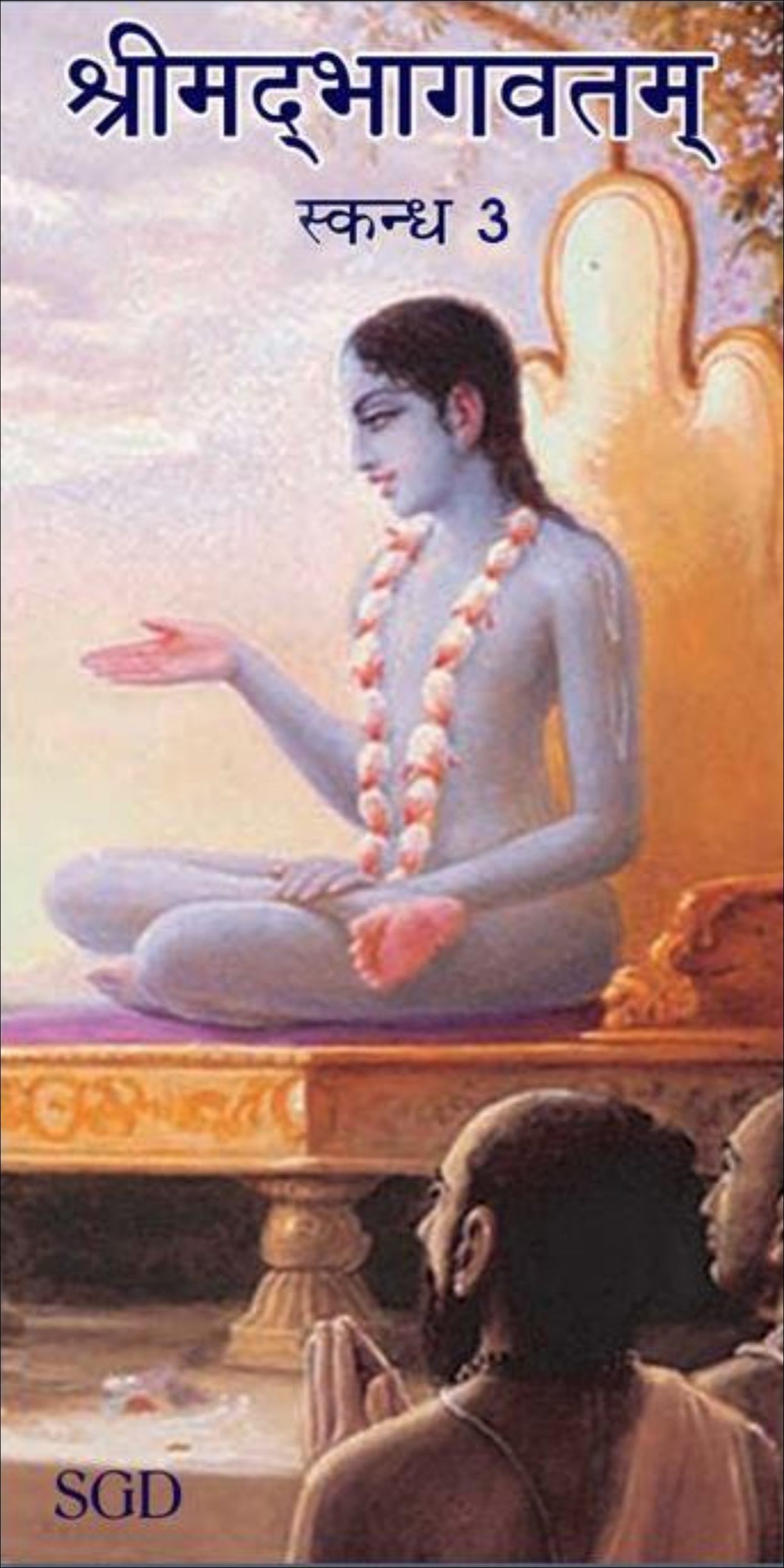

SGD

श्रीमद् भागवत पुराण

अध्याय 32

कर्म-बन्धन

श्रीलगुरुदेव

श्लोक 1: भगवान् ने कहा : गृहस्थ जीवन बिताने वाला व्यक्ति धार्मिक अनुष्ठान करते हुए भौतिक लाभ प्राप्त करता रहता है और इस तरह वह आर्थिक विकास तथा इन्द्रियतृप्ति की अपनी इच्छापूर्ति करता है। वह पुन: पुन: इसी तरह कार्य करता है।

श्लोक 2: ऐसे व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति के प्रति अत्यधिक आसक्त होने के

कारण भक्ति से विहीन होते हैं, अत: अनेक प्रकार के यज्ञ करते रहने तथा देवों एवं पितरों को प्रसन्न करने के लिए बड़े-बड़े व्रत करते रहने पर भी वे कृष्णभावनामृत अर्थात् भक्ति में रुचि नहीं लेते।

श्लोक 3: ऐसे भौतिकवादी व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति से आकृष्ट होकर एवं अपने पितरों एवं देवताओं के प्रति भक्तिभाव रखकर चन्द्रलोक को जा सकते हैं, जहाँ वे सोमरस का पान करते हैं और फिर से इसी लोक में लौट आते हैं।

श्लोक 4: जब भगवान् हरि सर्पों की शय्या पर, जिसे अनन्त शेष कहते हैं, सोते हैं, तो भौतिकतावादी पुरुषों के सारे लोक, जिनमें चन्द्रमा जैसे स्वर्गलोक सम्मिलित हैं, विलीन हो जाते हैं।

श्लोक 5: जो बुद्धिमान हैं और शुद्ध चेतना वाले हैं, वे कृष्णभक्ति में पूर्णतया सन्तुष्ट रहते हैं। वे प्रकृति के गुणों से मुक्त होकर वे इन्द्रियतृप्ति के लिए कर्म नहीं करते; अपितु वे अपने-अपने कर्मों में लगे रहते हैं और विधानानुसार कर्म करते हैं।

श्लोक 6: अपने कर्तव्य-निर्वाह, विरक्तभाव से तथा स्वामित्व की भावना से अथवा अहंकार से रहित होकर काम करने से मनुष्य पूर्ण शुद्ध चेतना के द्वारा अपनी स्वाभाविक स्थिति में आसीन होकर और इस प्रकार से भौतिक कर्तव्यों को करते हुए सरलता के साथ ईश्वर के धाम में प्रविष्ट हो सकता है।

श्लोक 7: ऐसे मुक्त पुरुष प्रकाशमान मार्ग से होकर भगवान् तक पहुँचते हैं, जो भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों का स्वामी है और

इन जगतों की उत्पत्ति तथा अन्त का परम कारण है।

श्लोक 8: भगवान् के हिरण्यगर्भ विस्तार के उपासक इस संसार में दो परार्धों के अन्त तक रहे आते हैं, जब ब्रह्मा की भी मृत्यु हो जाती है।

श्लोक 9: त्रिगुणात्मिका प्रकृति के निवास करने योग्य दो परार्धों के काल का अनुभव करके श्री ब्रह्मा इस ब्रह्माण्ड का, जो पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, मन, अहंकार आदि के आवरणों से ढका हुआ है, संहार

कर देते हैं और भगवान् के पास चले जाते हैं।

श्लोक 10: जो योगी प्राणायाम तथा मन-निग्रह द्वारा इस संसार से विरक्त हो जाते हैं, वे ब्रह्मलोक पहुँचते हैं, जो बहुत ही दूर है। वे अपना शरीर त्याग कर ब्रह्मा के शरीर में प्रविष्ट होते हैं, अत: जब ब्रह्मा को मोक्ष प्राप्त होता है और वे भगवान् के पास जाते हैं, जो परब्रह्म हैं, तो ऐसे योगी भी भगवद्धाम में प्रवेश करते हैं।

श्लोक 11: अत: हे माता, आप प्रत्यक्ष भक्ति द्वारा जन-जन के हृदय में

स्थित पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण ग्रहण करें।

श्लोक 12-15: हे माता, भले ही कोई किसी विशेष स्वार्थ से भगवान् की पूजा करे, किन्तु ब्रह्मा जैसे देवता, सनत्कुमार जैसे ऋषि-मुनि तथा मरीचि जैसे महामुनि सृष्टि के समय इस जगत में पुन: लौट आते हैं। जब प्रकृति के तीनों गुणों की अन्त:क्रिया प्रारम्भ होती है, तो काल के प्रभाव से इस दृश्य जगत के स्रष्टा तथा वैदिक ज्ञान से पूर्ण ब्रह्मा एवं आध्यात्मिक मार्ग तथा योग-पद्धति के प्रवर्तक बड़े-

बड़े ऋषि वापस आ जाते हैं। वे अपने निष्काम कर्मों से मुक्त तो हो जाते हैं और पुरुष के प्रथम अवतार (आदि पुरुष) को प्राप्त होते हैं, किन्तु सृष्टि के समय वे पुन: अपने पहले के ही रूपों तथा पदों में वापस आ जाते हैं।

श्लोक 16: जो लोग इस संसार के प्रति अत्यधिक आसक्त हैं, वे अपने नियत कर्मों को बड़े ही ढंग से तथा अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सम्पन्न करते हैं। वे ऐसे नित्यकर्मों को कर्मफल की आशा से करते हैं।

श्लोक 17: ऐसे लोग, रजोगुण से प्रेरित होकर चिन्ताओं से व्याप्त रहते हैं और इन्द्रियों को वश में न कर सकने के कारण सदैव इन्द्रियतृप्ति की कामना करते रहते हैं। वे पितरों को पूजते हैं और अपने परिवार, सामाजिक या राष्ट्रीय जीवन की आर्थिक स्थिति सुधारने में रात-दिन लगे रहते हैं।

श्लोक 18: ऐसे लोग त्रैवर्गिक कहलाते हैं, क्योंकि वे तीन उन्नतिकारी विधियों—पुरुषार्थों—में रुचि लेते हैं। वे उन भगवान् से विमुख

हो जाते हैं, जो बद्धजीवों को विश्राम प्रदान करने वाले हैं। वे भगवान् की उन लीलाओं में कोई अभिरुचि नहीं दिखाते, जो भगवान् के दिव्य विक्रम के कारण श्रवण करने योग्य हैं।

श्लोक 19: ऐसे व्यक्ति भगवान् के परम आदेशानुसार निन्दित होते हैं। चूँकि वे भगवान् के कार्यकलाप रूपी अमृत से विमुख रहते हैं, अत: उनकी तुलना विष्ठाभोजी सूकरों से की गई है। वे भगवान् के दिव्य कार्यकलापों को न सुनकर भौतिकतावादी पुरुषों की कुत्सित कथाएँ सुनते हैं।

श्लोक 20: ऐसे भौतिकतावादी व्यक्तियों को सूर्य के दक्षिण मार्ग से पितृलोक जाने दिया जाता है, किन्तु वे इस लोक में पुन: आकर अपने-अपने परिवारों में जन्म लेते हैं और जन्म से लेकर जीवन के अन्त तक पुन: उसी तरह कर्म करते हैं।

श्लोक 21: जब उनके पुण्यकर्मों का फल चुक जाता है, तो वे दैववश नीचे गिरते हैं और पुन: इस लोक में आ जाते हैं जिस प्रकार किसी व्यक्ति को ऊँचे उठाकर सहसा नीचे गिरा दिया जाये।

श्लोक 22: अतः हे माता, मैं आपको सलाह देता हूँ कि आप भगवान् की शरण ग्रहण करें जिनके चरणकमल पूजनीय हैं। इसे आप समस्त भक्ति तथा प्रेम से स्वीकार करें, क्योंकि इस तरह से आप दिव्य भक्ति को प्राप्त हो सकेंगी।

श्लोक 23: कृष्णचेतना में लगने और भक्ति को कृष्ण में लगाने से ज्ञान, विरक्ति तथा आत्म- साक्षात्कार में प्रगति करना सम्भव है।

श्लोक 24: उच्च भक्त का मन इन्द्रिय-वृत्तियों में समदर्शी हो जाता है

और वह प्रिय तथा अप्रिय से परे हो जाता है।

श्लोक 25: अपनी दिव्य बुद्धि के कारण शुद्ध भक्त समदर्शी होता है और अपने आपको पदार्थ के कल्मष से रहित देखता है। वह किसी वस्तु को श्रेष्ठ या निम्न नहीं मानता और परम पुरुष के गुणों में समान होने के कारण अपने आपको परम पद पर आरूढ़ अनुभव करता है।

श्लोक 26: केवल भगवान् ही पूर्ण दिव्य ज्ञान हैं, किन्तु समझने की भिन्न-भिन्न विधियों के अनुसार वे या

तो निर्गुण ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् या पुरुष अवतार के रूप में भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं।

श्लोक 27: समस्त योगियों के लिए सबसे बड़ी सूझबूझ तो पदार्थ से पूर्ण विरक्ति है, जिसे योग के विभिन्न प्रकारों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

श्लोक 28: जो अध्यात्म से पराङ्मुख हैं, वे परम सत्य (परमेश्वर) को कल्पित इन्द्रिय-प्रतीति द्वारा अनुभव करते हैं, अत: भ्रान्तिवश उन्हें प्रत्येक वस्तु सापेक्ष प्रतीत होती है।

श्लोक 29: मैंने महत् तत्त्व या समग्र शक्ति से अहंकार, तीनों गुण, पाँचों तत्त्व, व्यष्टि चेतना, ग्यारह इन्द्रियाँ तथा शरीर उत्पन्न किये हैं। इसी प्रकार मुझ भगवान् से ही सारा ब्रह्माण्ड प्रकट हुआ।

श्लोक 30: यह पूर्ण ज्ञान उस व्यक्ति को प्राप्त होता है, जो पहले से ही श्रद्धा, तन्मयता तथा पूर्ण विरक्ति सहित भक्ति में लगा रहता है और भगवान् के विचार में निरन्तर निमग्न रहता है। वह भौतिक संगति से निर्लिप्तदूर रहता है।

श्लोक 31: आदरणीय माता, मैंने पहले ही आप को ही परम सत्य जानने का मार्ग बता दिया है, जिससे मनुष्य पदार्थ तथा आत्मा एवं उनके सम्बन्ध के वास्तविक सत्य को समझ सकता है।

श्लोक 32: दार्शनिक शोध का लक्ष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जानना है। इस ज्ञान को प्राप्त करके जब मनुष्य प्रकृति के गुणों से मुक्त हो जाता है, तो उसे भक्ति की अवस्था प्राप्त होती है। मनुष्य को चाहे, प्रत्यक्षत: भक्ति से हो या दार्शनिक

शोध से हो, एक ही गन्तव्य की खोज करनी होती है और वह है भगवान्।

श्लोक 33: एक ही वस्तु अपने विभिन्न गुणों के कारण भिन्न-भिन्न इन्द्रियों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से ग्रहण की जाती है। इसी तरह भगवान् एक है, किन्तु विभिन्न शास्त्रीय आदेशों के अनुसार वह भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है।

श्लोक 34-36: सकाम कर्म तथा यज्ञ सम्पन्न करके, दान देकर, तपस्या करके, विविध शास्त्रों के अध्ययन से, ज्ञानयोग से, मन के

निग्रह से, इन्द्रियों के दमन से, संन्यास ग्रहण करके तथा अपने आश्रम के कर्तव्यों का निर्वाह करके, योग की विभिन्न विधियों को सम्पन्न करके, भक्ति करके तथा आसक्ति और विरक्ति के लक्षणों से युक्त भक्तियोग को प्रकट करके, आत्म-साक्षात्कार के विज्ञान को जान करके तथा प्रबल वैराग्य भाव जागृत करके आत्म-साक्षात्कार की विभिन्न विधियों को समझने में अत्यन्त पटु व्यक्ति उस रूप में भगवान् का साक्षात्कार करता है जैसा कि वे

भौतिक जगत में तथा अध्यात्म में निरूपित किये जाते हैं।

श्लोक 37: हे माता, आपसे मैं भक्तियोग तथा चार विभिन्न आश्रमों में इसके स्वरूप की व्याख्या कर चुका हूँ। मैं आपको यह भी बता चुका कि शाश्वत काल किस तरह जीवों का पीछा कर रहा है यद्यपि यह उनसे अदृश्य रहता है।

श्लोक 38: अज्ञान में किये गये कर्म अथवा अपनी वास्तविक पहचान की विस्मृति के अनुसार जीवात्मा के लिए अनेक प्रकार के भौतिक

अस्तित्व होते हैं। हे माता, यदि कोई इस विस्मृति में प्रविष्ट होता है, तो वह यह नहीं समझ पाता कि उसकी गतियों का अन्त कहाँ होगा।

श्लोक 39: भगवान् कपिल ने आगे कहा : यह उपदेश उन लोगों के लिए नहीं है, जो ईर्ष्यालु हैं, अविनीत हैं या दुराचारी हैं। न ही यह उपदेश दम्भियों या उन व्यक्तियों के लिए है, जिन्हें अपनी भौतिक सम्पदा का गर्व है।

श्लोक 40: यह उपदेश न तो उन लोगों को दिया जाय जो अत्यन्त

लालची हैं और गृहस्थ जीवन के प्रति अत्यधिक आसक्त हैं, न ही अभक्तों और भक्तों एवं भगवान् के भक्तों तथा भगवान् के प्रति ईर्ष्या रखने वालों को दिया जाय।

श्लोक 41: ऐसे श्रद्धालु भक्त को उपदेश दिया जाय जो गुरु के प्रति सम्मानपूर्ण, द्वेष न करने वाला, समस्त जीवों के प्रति मैत्री भाव रखने वाला हो तथा श्रद्धा और निष्ठापूर्वक सेवा करने के लिए उत्सुक हो।

श्लोक 42: गुरु द्वारा यह उपदेश ऐसे व्यक्तियों को दिया जाय जो

भगवान् को अन्य किसी भी वस्तु से अधिक प्रिय मानते हैं, जो किसी के प्रति द्वेष नहीं रखते, जो पूर्ण शुद्ध चित्त हैं और जिन्होंने कृष्णचेतना की परिधि के बाहर विराग उत्पन्न कर लिया है।

श्लोक 43: जो कोई श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक एक बार मेरा ध्यान करता है, मेरे विषय में सुनता तथा कीर्तन करता है, वह निश्चय ही भगवान् के धाम को वापस जाता है।

* * * * * * *

श्रीलगुरुदेव